P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4* (Part-1) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय कला जगत में मालवा चित्रशैली का महत्व

कंचन कुमारी
शोधार्थी,
चित्रकला विभाग,
दयालबाग एजुकेशनल इन्सटीट्यूट, दयालबाग, आगरा

सारांश

उत्तर एवं दक्षिण भारत के मध्य स्थित मालवा दोनों भागों का सदैव ही एक सन्धि स्थल रहा है। मालवा की ताम्राश्म युगीन कलाग्राम्य संस्कृति होते हुए भी मानव के कलात्मक विकास का प्रथम सोपान है।

मालवा की परमार कला राजस्थान के चित्र वैभवों के सामनेला खड़ा कर देती है। परमारों की गुजरात, मालवा एवं राजस्थान क्षेत्रों की प्रभुसत्ता से मालवा कला भी सार्वभौमिक अपभ्रंश के रूप में सामने आती है। अतः मालवा चित्र शैली मध्ययुग में राजस्थान एवं गुजरात से प्रभावित करती रही। मालव कला प्रारम्भ से ही स्थानीय विशेषताओं के कारण विशिष्ट मौलिकताओं का वाहन रही हैं।

भारतीय कला जगत में मालवा एवं मालवा चित्र शैली का योगदान महत्वपूर्ण है। सभी भारतीय क्षेत्रों की भाँति मालवा क्षेत्र भी पुनुरूत्थान की लहर से ग्रसित हुआ। कला समाज का दर्पण है, मालवा लघुचित्रों में कलात्मकता ने समाज का कथाचित्रण करके, पहले युग का वर्णन किया ही, साथ ही अपने युग की चित्रों के माध्यम से दर्शा दिया। मालवा लघुचित्रों के उदाहरण हमें परमार युग से ही उपलब्ध होने लगते हैं। मालवा के लोक कलाकारों ने काल्पनिक आदर्श को आत्मसात कर उसके सादृश्य निर्माण में भारत के अन्य प्रदेशों के कलाकारों की तरह अपने जीवन को सार्थक समझा, जिससे चित्रकला के अधिकतर उदाहरण सुन्दर एवं आकर्षक बने।

मुख्य शब्द : ताम्राश्म, आत्मसात, जीवन्त शक्ति, वास्तुविन्यास, रूपायन विधि, पुरापाषाण, मृणभाण्ड, विश्लेषण, संश्लेषण।

प्रस्तावना

उत्तर एवं दक्षिण भारत के मध्य स्थित मालवा दोनों भागों का सदैव ही एक सन्धिस्थल रहा है। कालान्तर में उत्तर का अवन्ति एवं दर्शाण क्षेत्र आकरावन्ति के नाम से जाना जाने लगा। जो क्रमशः पूर्वी अवन्ति और पश्चिमी अवन्ति था। दक्षिण का अनूपक्षेत्र दक्षिण अवन्ति के नाम से जाना जाता था। मालवों के अभ्युदय के पश्चात् सम्पूर्ण अवन्ति प्रदेश का नाम धीरे–धीरे मालव देश पड़ गया जो 'महामालव' के रूप में ज्ञात होता है। जिसकी परिभाषा अनुश्रुतियां करती है।[1]इस कारण इसने न केवल दोनों भागों की परम्पराओं को आत्मसात किया है, अपितु स्वयं में भी अनेक मौलिक देन प्रदान की है। जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति मालवा की यह देन कलाओं के क्षेत्र में भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। मालवा कला–महान भारतीय कला का अंग है, असकी जीवन्त शक्ति, वास्तुविन्यास, रूपायन विधि आदि भारतीय कला के समान ही है। भारतीय कला धार्मिक एवं लौकिक आवश्यकता तथा समाज के सर्वप्रथम आन्दोलन से सम्बद्ध रही है। भारतीय धर्मों में भक्ति का प्रावाल्य होने से प्रादेशिक कलाओं के तदनुरूप क्रमिक विकास को बल मिला। भारतीय वास्तु एवं मूर्तिकला का प्रयोजन प्रायः धार्मिक रहा है। फलतः लौकिक आवश्यकता के अतिरिक्त आध्यामिकता की पृष्ठभूमि इसके विकास में सहायक रही है। भारतीय कला की विशेषतायें एवं कमिया मालवा कला एवं चित्रकला में दृष्टव्य है, परन्तु वातावरण समाजिक मान्यतायें एवं संस्कार भौगोलिक परिस्थितियाँ, कला समाग्री आदि के कारण मौलिक रूप में मालवा कला भारत के अन्य प्रदेशों की कला से कुछ विशिष्ट है। उत्तर एवं दक्षिण भारत के बीच होने से मालवा कला को दोनों कलाधाराओं में प्रभावित किया उत्तर भारत की कला में भी क्षेत्रीय विभिन्नतायें, बंगाल, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश के कला रूपों में दृष्टव्य है। अत्एव भारत के हृदय स्थल में स्थित होने से मालवा कला का स्वतन्त्र एवं स्थानीय अस्तित्व भी ज्ञातव्य है। मालवा में प्रवाहित नर्मदा, चम्बल, शिवना, बेतवा आदि नदियों के जलपूर्ति तथा विंध्याचल एवं सतपुड़ा की श्रेणियों ने सुदृढ़ पाषाण खण्डों द्वारा मालव कला के विकास में पुरापाषाण युग से ही योगदान दिया।[2]

मालव कला की लोक–परम्परा लम्बे समय से अक्षुण दिखाई देती है, पाषाणयुगीन मानव ने प्रस्तर उपकरणों का क्रमिक विकास किया था, जिसकी चरम परिवति मालवा की ताम्राश्मयुगीन कला में दृष्टवय है। मालवा की ताम्राश्मयुगीन कला ग्राम्य संस्कृति होते हुए भी मानव के कलात्मक विकास का प्रथम सोपान है। इस युग में चक्र की खोज ने कला की नई विधाओं के जन्म एवं विकास में सहायोग दिया। व्यवस्थित, ग्राम नियोजन, गृह निर्माण, मृणभाण्ड एवं मृण्मुर्तियों का निर्माण ताम्र आभुषणों आदि का परिपक्व रूप ताम्राश्मयुगीन कला की दीर्घावधि में संवर कर ऐतिहासिक युग की कला का आधार बना।[3]

मालवा की ताम्राश्मयुगीन कला बनारसघाटी एवं गोदावरी के काठे की समकालीन कलाओं से प्रभावित अवश्य है। परन्तु इसका स्थानीय मौलिक स्वरूप विशिष्ट है। लोहे के अन्वेषण के पश्चात् छठी शताब्दी ई0 पू0 आते–आते भारतीय कला में नवीन क्रान्ति के दर्शन होते है। प्रद्योत नन्दयुग के वास्तुकला उत्तर भारत की कलाओं से समानता रखती है, परन्तु उज्जयिनी के नगर दुर्ग एवं वेश्याटेकरी स्तूप;अन्य समकालीन कलाओं में अद्वितीय है। ये यहाँ की प्रादेशिक भिन्नता के द्योतक है। इसी प्रकार उज्जयिनी में पाँचवी शती ई0 पू0 से ही उत्तरी काले चमकीले पात्र निर्मित होने लगें थे। मौर्यकाल में तक्षण कला का विकास हुआ। अशोक में मगध के चुनारी पत्थर से निर्मित राजकीय कला के स्तम्भों को उत्तर भारत के विभिन्न स्थलों के साथ मालवा में साँची एवं उज्जयिनी में भी स्थापित किया था। परन्तु मालवा के लोक–कलाकारों ने लोहें की छेनियों का सम्बल लेकर, यक्ष–यक्षियों की मूर्तियां उकेरी जिसके उदाहरण विदिशा के आस–पास मिले है। उज्जयिनी का पारिखयुक्त वेश्याटेकरी का स्तूप अद्वितीय हैं। मालवा के मौर्य शुंगयुगीन उज्जयिनी, महेश्वर, कसराबन्द, साँची, सतधारा सेनारी, अंधेर भोजपुर आदि के स्तूप वेश्याटेकरी स्तूप के ही विकसित स्वरूप है। विदिशा के हस्तिदन्तकारों ने अपनी बारीक कला का प्रदर्शन साँची के तोरणद्वारों में किया था, जिनमें स्थानीय पत्थर का ही उपयोग हुआ है। सुंग सातवाहन के युग में बनी यक्ष–यक्षी मूर्तियों तथा मृण्मूर्तियां मालवा की लोक कला का विकसित स्वरूप हैं। नागों ने मालवा की लोक कला को अनेक कला रूपों में ढाला। इनके शासन काल में यक्ष–यक्षी, नाग–नागी, कुबेर, बुद्ध, विष्णु, एक मुखी शिवलिंग आदि के रूपायन के साथ–साथ गुफाएँ एवं मन्दिर भी बने।[4]

इस काल में बने साँची के तोरण द्वारों का कला वैभव मथुरा एवं अमरावती की कला से श्रेष्ठ एवं मालव लोक कला का विकसित स्वरूप है। औलिकर–गुप्तकाल में मालव लोककला का चरम विकास, गुफा एवं मन्दिर वास्तुशिल्प तथा मूर्तिकला में दृष्टव्य है। पश्चिमी मालवा के स्थानीय औलिकर शासकों ने ब्राह्मणों एवं बौद्ध वास्तु एवं मूर्तिकला के विकास में योगदान दिया तथा गुप्त सम्राटों ने उत्तर भारत के गुप्तकला केन्द्र सारनाथ एवं मथुरा की तरह पूर्वी मालवा में विदिशा, साँची, एरण आदि स्थलों पर मालव कला को स्थानीय लोक–कला के रूप में पल्लवित होने दिया।[5] औलिकर गुप्त युग में उदयगिरी, बाघ घमनार आदि स्थलों पर विकसित गुफाएँ खोदी गयी जो अजन्ता के टक्कर की है। बाघ की गुफाओं की चित्रकारी उस युग की भारतीय चित्रकला का एक उदाहरण है। औलिकर गुप्तों से परवर्ती–युग का कला बैभव मालव–कला का ही संक्रमण काल है। मालवा में इस युग का बिखरा मूर्ति शिल्प जहाँ एक ओर औलिकर गुप्तकाल के विकसित स्वरूप को अपने में संजोये है, वहीं दूसरी ओर अपने से परवर्ती परमार कला के अंकुरों को अपने गर्भ में छिपाये है।[6]परमार–कला मालव लोककला का चरम विकसित स्वरूप है। परमार युग से पहले चित्रकला के वर्णन हमें सहित्य, काव्यों से प्राप्त हुये हैं जो उन युगों की मालवा चित्रकला समृद्धि का परिचय देते हैं, जिनका वर्णन पृथक अध्याय में किया है।[7]

मालवा की परमार कला राजस्थान के चित्र वैभवों के सामने ला खड़ा कर देती है। परमारों की गुजरात, मालवा एवं राजस्थान क्षेत्रों की प्रभुसत्ता से मालवा कला भी सार्वभौमिक अपभ्रंश के रूप में सामने आती है। अतः मालवा चित्र शैली मध्ययुग में राजस्थान एवं गुजरात से प्रभावित करती रही। इस समय की मूर्तियाँ मालवा में बिखरी पड़ी हैं। ताम्रपत्र व अन्य ताड़पत्रीय पोथियाँ इसके उदाहरण हैं। परन्तु मालव कला प्रारम्भ से ही स्थानीय विशेषताओं के कारण विशिष्ट मौलिकताओं का वाहन रही हैं।[8]

इल्तुतमिश से लेकर अलाउद्दीन खिलजी तक मुस्लिम आक्रमणों ने मालवा की जीवन्त लोककला को समाप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी परन्तु माण्डु के सुल्तानों के अन्तर्गत, हिन्दू जैन व्यापारियों के प्रभाव से यह कला पाण्डुलिपियों में चित्रित हो उस युग की चित्रकला परम्परा की कहानी कह देती हैं।

इन कलाकृतियों में ईरानी प्रभाव का चित्रण है अपितु ये पूर्व भरतीय है, इस प्रकार मुस्लिम शासन में जैन एवं वैष्णव सम्बन्धी पाण्डुलिपियों की रचना होने के कारण भारत के समस्त क्षेत्रों में यही प्रभाव व्याप्त हूआ और पन्द्रहवीं शताब्दी में में मुस्लिम शासन होने के साथ ही सम्पूर्ण भारत में जैन धर्म और वैष्णव धर्म सम्बन्धित रचना में कोई रूकावट नहीं आयी।[9]

भारतीय कला जगत में मालवा एवं मालवा चित्र शैली का यही योगदान महत्वपूर्ण है। सभी भारतीय क्षेत्रों की भाँति मालवा क्षेत्र भी पुनुरूत्थान की लहर से ग्रसित हुआ। इसके 1439 ई0 वाले कल्पसूत्र के चित्रों में अकृतियों में अपभ्रंश की प्राचीन परम्परा होते हुए भी निखरा है। आकृतियाँ ठोस एवं प्रमाणिक हैं। यद्यपि भारतीय सौन्दर्यात्मक रेखायें अपना स्थान लिये हुए है।[10]शास्त्रीय एवं प्रमाणिक होते हुए कालात्मक रूप लिये हुए है। भावों का संयोजन भारतीय चित्रकला छाप का प्रमाण है। परन्तु इन चित्रों में एक अंश तक ईरानी प्रभाव मिश्रित हो गया था। जिसके मुल्यांकन में द्विविधा उत्पन्न हो जाता है। यह प्रभाव शिराजी एवं हिराती था। जो तैमूर लंग के आक्रमणों 1500 ई0 में भागे हुए चित्रकारों के फलस्वरूप भारतीय चित्रकला जगत पर सार्वभौमिक रूप में पड़ा था।[11] सोलहवीं शती की नियामतनामा शैली ने हिन्द ईरानी शैली का सूत्रपात किया, जो आगे चलकर दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजपूताना, गुजरात, दक्षिण चौरपंचशिखा शैली के के रूप में सार्वभौमिक रूप से चित्र सं0–1, महावीर स्वामी का स्थानान्तरण, 1439 ई0 सम्पूर्ण भारत में फैली, जिसमें कल्पसूत्र की बिना परली आँख वाली आकृतियों का रूप विद्यमान है। यह नियामतनामा मुगलकाल के पहले का प्रमुख चित्र संख्या–1, कल्पसूत्र है जिसने भारतीय चित्रकला को मिश्रण का ठोस आधार दिया और आकृतियों में लावण्यता एवं शास्त्रीयता के प्रति रूचि उत्पन्न की जो अपभ्रंश के रूप में ही निखरती चली गयी। बोस्ता ऑफ सादी कल्पसूत्र ईरानी चित्रकारों के माण्डु में संरक्षित होने का प्रमाण है। अतः हिन्दू ईरानी शैली के समगक का प्रमुख केन्द्रं माण्डु ही था। जहाँ चित्रकारों के विभिन्न समूह क्रियाशील थे और वहाँ हिन्दू चित्रकार प्राचीन भारतीय परम्परा के आधार पर पाण्डुलिपियों की रचना करते थे और ईरानी चित्रकार ईरानी कलम के अनुरूप अपने ईंरानी विषयों पर चित्र रचना करते थे।[12] ये दोनों प्रकार के चित्रकार एक दूसरे की शैली अपनाने की चेष्टा भी करते थे तथा हिन्दू चित्रकार हिन्दू शैली में दिक्षित होते थे और ईरानी चित्रकार हिन्दू शैली में दिक्षित होते थे। यही हिन्दू–ईरानी शैली और चौरपंचशिखा समूह में चित्रों को लांघकर 1660 ई0 तथा 1670 ई0 के मालवा लघुचित्रों में पुनः दिखायी देती है, जिनमें कुछ आकृतियाँ नियामतनामा चित्रों की आकृतियों से मिलती–जुलती है। 1634–35 में यह शैली आसपास की क्षेत्रीय शैलियों से उद्दीप्त होकर पुनः 1650 ई0 में माण्डु कल्पसूत्र के चित्रों की आकृतियों से कुछ ज्यादा पुष्ट आकृतियों को लिए प्रकट हुई, इसमें मुगल एवं हिन्दू के मिश्रण की गन्ध थी। 1680–90 में मालवा के अलग–अलग क्षेत्रों में हिन्दू एवं मुस्लिम रूप धारण किए हुए पास के क्षेत्रों से प्रभावित है और पास के क्षेत्रों को प्रभावित करती है।[13]

अन्य भारतीय क्षेत्रों की भाँति इसके चित्रण का विषय धार्मिक ग्रन्थ एवं नायिका भेद चित्र ही प्रमुख था। नायिका भेद में राधा–कृष्ण काव्य पर आधारित चित्र रीतिकालीन वासना की गन्ध से पूर्ण है; जिनमें राधा–कृष्ण का सम्बन्ध लौकिक सामन्तिय जीवन के आधार पर चित्रित किया गया है; जबकि राधा–कृष्ण प्रेम सम्बन्ध

उपनिषदों में त्याग परद आधारित है। जो स्वच्छ एवं दिव्य है। 1700 ई0 तथा 1725 ई0 तक की चित्र धि पूर्णरूप से मेवाड़ की कला शैली के सन्निकट है और 1750 तक यह पुनः मेवाड़ शैली के समापन के साथ ही साथ स्वयं भी समाप्त होती है। अतः मेवाड़ और मालवा शैली परस्पर आदान–प्रदान का मापक है। क्योंकि मेवाड़ के पुनरूत्थान के साथ ही साथ मालवा पुनरूत्थान प्रारम्भ होता है और बीच के समय में परस्पर एक शैली पर हम दूसरी शैली का प्रभाव देखते हैं और समापन भी साथ ही साथ देखते हैं। सम्पूर्ण भारत में ये दोनों शैलियाँ प्रमुख लहरों से निरन्तर मिलती एवं अलग होती रही हैं। प्रथम लहर उत्तर प्रदेश से मालवा होती हुई राजस्थान (मेवाड़) से राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में प्रवाहित होती है। दूसरी लहर दिल्ली से राजस्थान होती हुई मालवा से बुन्देलखण्ड एवं दक्षिण तक टकराती है। जो महापथों के व्यापार सन्धि युद्ध एवं विवाह के कारण होती थी। मालवा शैली के विघटन के साथ ही साथ हम राजस्थान के अन्य क्षेत्रों जैसे उदयपुर, कोटा–बूंदी, बीकानेर आदि क्षेत्रों में मालवा चित्रों जैसी विशेषताएँ देखते हैं।[14]

सोलहवीं से अठारहवीं तक लगभग तीन शताब्दियों में लोककला के तीन रूप , अर्थात काव्य, संगीत और चित्रकला एक दूसरे के साथ सामावांतर विकसित हुए। यह विभिन्न मुहावरों में एक ही निर्वेसक्तिक भावों को व्यक्त करते थे। सभी भागवत और पुराणों के उपाख्यानों के धार्मिक विषय से पूर्ण थे। मालवा लघुचित्रों

का भारतीय परिपेक्ष्य में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक महत्व है जो इस प्रकार है।[15]

कला समाज का दर्पण है, मालवा लघुचित्रों में कलात्मकता ने समाज का कथा चित्रण करके, पहले युग का वर्णन किया ही, साथ ही अपने युग की चित्रों के माध्यम से दर्शा दिया। इस प्रकार उस युग का पोषण तो किया ही, लेकिन आधुनिक युग के समाज को अपने युग के समान, धर्म–मान्यताओं, कर्तव्य, रूढ़ियों एवं परम्पराओं से परिचित करा दिया।[16]सभी चित्र सामाजिक कथाओं को लेकर बनाये गये हैं, जिनमें महापुरूषों के चरित्र का चित्रण हुआ है। राजनीतिक क्षेत्र के अनुसार अधिकांश चित्रों में युद्धों का

चित्रण एक सामान्य बात है, मनुष्य के आक्रामक स्वभाव का परिचय युग–युगों से होने वाले युद्धों को इन चित्रणों के माध्यम से भी किया जा सकता है। चित्रों में चित्रित वेशभूषा उस समय में शासित होने वाली ईकाई का स्पष्ट रूप है, किस प्रकार राजा सलाह एवं राज्य करता था? किस प्रकार वह युद्धों से निवृत होकर प्रेमालाप करता था? ये लघुचित्र प्रायः अभिजात्य वर्ग के श्रेणी में देखने के लिए बनाये जाते थे तथा इन राजाओं के दरबारों में आश्रित कवियों एवंचित्रकारों की सम्मिलित कृतियाँ होती थी। मध्य युग चित्र सं0–2, मारिची का वध का विचार करते हुए राम–लक्ष्मण, 1635 ई0

के सामन्तों का प्रिय व्याख्यान, आखेट खेलना, नृत्यगान देखना, अपने गुणगान या श्रृंगार प्रधान काव्यों का पाठ सुनना था। लघुचित्र देखना भी एक व्यसन था। सांस्कृतिक रूप से इन चित्रों के माध्यम से आधुनिक युग में उस काव्य, ग्रन्थ के नाटक करने में सहयोग मिलता है, क्योंकि इन चित्रों से ही क्षेत्रीय वेषभूषा, वस्त्रालंकरण, केशसज्जा, इत्यादि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है और नाटकों को उनका क्षेत्रीय रूप दिया जाता है। नाटकों में भावाभिव्यक्ति के लिए भी इन चित्रों का महत्व है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से मालवा लघुचित्र सभी भारतीय लघुचित्रों की भाँति एक आध्यात्मिक सम्यक तत्व से परिचित कराते है।[17] सामान्य रूप से युग आवश्यकता के अनूरूप भगवान कभी महावीर का कभी बुद्ध का अवतार ग्रहण कराते है, कभी सीमाओं में बंधे राम मर्यादा पुरूषोत्तम रूप धारण करते हैं और मूल आदि कारण शक्ति भी उन्हीं की आज्ञा का अनुसरण करती है। कभी कही राम कृष्ण बनकर विभिन्न आत्मा रूपी नारियों से प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर रास लीला का अनुष्ठान करते हैं। अतः प्रेम की निष्काम भक्ति और विरह की उज्जवल, पीड़ा संवेदना ही युग–युग के लिए एक ज्वलन्त उदाहरण बन जाती है। देवी महात्मय चित्र बलिदान से पूरित, वहीं वन–वन में सह–धर्मिणी भटकने वाली अल्हादिनी शक्ति अपने उग्र रूप में सिंह पर अवतरित होकर प्रत्येक युग में राक्षस शक्तियों का नाश करती है। अधर्म, अन्याय, अनीति का वध करके धर्म न्याय एवं नीति की स्थापना ही उसका परिचय है।[18] चित्रों में अन्य विषयों के चित्रों में राक्षस बध, इसी भावना से सम्बन्धित है। चित्र संख्या–2 में मारिची वध का प्रसंग हमें मूल प्रकृति आल्हादनी के कहने पर मानव रूप में अखिल अधिष्ठाता श्री राम एवं लक्ष्मण चमकीले मायारूपी आवरण का अच्छेदन करने को तत्पर है। अतः प्रत्येक जीव में यही माया रूपी चमड़ी विद्यमान है, परब्रह्म द्वारा उसके अच्छेदन की कामना जीव कल्याण की कामना है और तीर लगना तत्वज्ञान से जब जीव परिचित हो जाता है तबवह स्वयं के स्वरूप को पहचान कर दीन हो जाता है और माया रूपी चमड़ी का भेद खुल जाता है।[19]चित्र संख्या–3 से ध्वनित होता है कि दीनता ही जीव का धर्म है जीव जब हृदय से दीन होगा तभी भगवत पद की प्राप्ति होगी तीभी वास्तविक ब्रह्म प्राप्ति होगी। यहाँ नग्नता प्रतिकात्मक अर्थ दीनता को सम्बोधित करती है। आदि अनेकचित्र धार्मिक एवं आध्यात्मिक अर्थों को ध्वनित करते हैं।[20]

प्राचीन राजवंशों द्वारा पल्लवित यह क्षेत्र राजनैतिक केन्द्र के रूप में भारत की सांस्कृतिक धाराओं को मार्ग देने में सक्षम हुआ है, देश का केन्द्रीय व्यापारिक महाकेन्द्र होने के नाते इसने चित्र सं0–3, चीर हरण लीला, 1690ई0

भारतीय चित्रकला से प्रेरणा दी है।

प्रबन्ध के उपसंहार के रूप में मालवा लघुचित्र शैली की भारतीय लघुचित्र शैली को प्रदत्तदेने की चर्चा करना एक श्रेयपूर्ण एवं सुखद कर्तव्य है। उत्तर और दक्षिण भारत के मध्य युक्ति–युक्त सामंजस्य एवं स्वयं उपनी ओर से अनेक भौतिक प्रयोगों द्वारा मालवा अंचल ने अपनी सत्त प्रबुद्ध एवं कर्मठ चित्रकला साधना का जो गरिमामय अध्ययन प्रदर्शित किया है, प्रस्तुत प्रबन्ध उस चित्रकला साधना को शब्द मात्र देने का एक अकिंचन प्रयास भर है।

सल्तनत कालीन मालवा लघुचित्रों से यह निष्कर्ष निकालना सहज हुआ है कि किस प्रकार रक्त मिश्रण के फलस्वरूप भी चित्रकला रूपी भागीरथी पन्द्रहवीं शती के मुहाने से लेकर अपने उत्थान एवं पतन रूपी मोड़ों से गुजरती (बहती हुई) अठारहवीं शती के अर्द्धशतक में अपने गन्तव्य विश्राम पर पहुँची। अपभ्रंशीय लोकतत्वों से प्रारम्भ होकर लोकतत्वों में ही समाहित हो गयी। इस प्रकार मालवा लघुचित्रों शैली महान भारतीय चित्रकला का एक अंग है। इस शैली के लघुचित्रों की आकृतियाँ (मानवीय, प्राकृतिक एवं आलंकारिक) एक क्षेत्रीय विशेषता लिए हुए है, अपितु अन्य भारतीय शैलियों ने इस शैली को प्रेरणा दी है एवं ली है। इसलिए भारतीय कला जगत में इस शैली का महत्व है।

परम्परागत कलाओं में मानव स्वभाव व उसकी अभिव्यक्ति चित्रण का मुख्य केन्द्र रही, जिसमें चित्रकार की भावात्मकता, अन्तःप्रेरणा एवं कुशाग्र बुद्धि का उचित परिचय मिलता है। चित्रों में विषय वस्तु को अधिक महत्व दिया गया है; जिसमें धार्मिक, ऐतिहासिक एवं दरबारी जन जीवन के साथ राग–रागनियों व नायक–नायिकाओं के रति सम्बन्ध एवं सामाजिक रीति–रिवाजों को स्पष्ट रूपों में दर्शाया है। परम्परागत पहनावा व रहन–सहन भी आधुनिक जन–जीवन में अपनाया गया, जिसे हम आधुनिक कहते हैं। वे कपड़े केश विन्यास का पहनाव, जूड़ा बनाना आदि परम्परा को नये ढंग से अपनाना मात्र ही है। ये अजन्ता के भितिचित्रों में पहले चित्रित हो चुके थे, तत्पश्चात ग्यारहवीं से सत्रहवीं शती तक के सभी परम्परागत गुर्जर, जैन, मेवाड़, माण्डु व माल्वा शैली में ऐसे प्रतिमान निश्चित रूप से हुए जो विषय को छोड़कर सभी चित्रण तत्व आधुनिक कला एवं जन–जीवन में अपनाये जा रहे हैं।

भारतीय चित्रण परम्परा अपने कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर अब तक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित होती रही है। जिसके उल्लेख हमें 'विष्णु पुराण', अपराजित पृच्छा; शिल्परत्न, समरांगण सूत्रधार, चित्र–लक्षण आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं, जिनके कलापक्ष तथा भावपक्ष दोनों ही आधुनिक चित्रकला में निर्वाहित हो चुके हैं। जिनसे इस चित्रशैली में प्रचलित शब्दयुक्त योजनाओं के आधार स्पष्ट होते हैं।

इन चित्रों के विश्लेषण एवं संश्लेषण में अब अध्ययन की नई सम्भावनायें प्रारम्भ हो रही हैं। ये चित्रण में नित नवीन प्रयोगों के साथ मिलते हैं, जिनमें मूलभूत तत्व एवं गतियों का अध्ययन द्विविधा विस्तार में फलक एवं फलकीय गतियों का अध्ययन साथ ही दृश्यात्मक गति विधान, रंगों में प्रमेय सिद्धान्त, रंगीम फलक विषयात्मक प्रतीक रंगों का अध्ययन आदि सभी नई उपलब्धियां मालवा प्रदेश की चित्रकला में स्पष्ट प्रतिपादित होती है।

चित्रों को इस कलावादी चिश्लेषण से आधुनिक चित्रकला के सभी सिद्धान्तों एवं परम्परागत शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक अध्ययन मालवा चित्रशैली के कई चित्रों में हुआ है जो परम्परागत चित्रण विधान को देखने की एक दृष्टि देते हैं, साथ ही उस काल की कला में चित्र निर्माण के शास्त्रीय आधार रहे हैं। परम्परागत मालवा चित्रशैली के से सभी प्रेरक तत्व इस चित्रशैली के कलावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं। कला शिक्षा की भूमिका में ये ही तत्व भारतीय चित्रकला के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

इस चित्रशैली में से तत्व मध्यकाल एवं पुनुरूत्थान काल में ही नहीं थे, वरन् प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से ही विरासत में प्राप्त हुए हैं; जिनका प्रमाण साँची, उदयगिरी एवं खण्डगिरी के अर्द्धचित्र है। कथा को एक ही फलक पर वर्णात्मक रूप में अलग–अलग उत्कीर्ण करने की प्रथा के कारण ही उसी भाँति के लघुचित्रों के उद्भव में सहायक सिद्ध हुए।

अध्ययन का उद्देश्य

मेरे शोधकार्य का शीर्षक मालवा लघु चित्रण शैली में लोककला के तत्व है, जिसमें से मैनें एक भाग भारतीय कला जगत में मालवा चित्रशैली के महत्व को अपना शोध पत्र बनाया है। जिसमें मालवा के भौगोलिक, ऐतिहासिक इतिहास को लेकर वहां के वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला पर प्रकाश डाला है लोककला के तत्व मालवा शैली में हमें किस प्रकार दिखाई देते है यहचित्रों के माध्यम से इस पत्र में बताने का प्रयास किया है। मैं आशा करती हूँ कि इसके आधार पर शोधकार्य को पूर्ण कर पाऊं तथा आगे आने वाले शोधार्थियों के लिये ज्ञानवर्धक व मूल्यवान सिद्ध हो तथा कलाजगत व समस्त अनुसंन्धान कर्ताओं के लिए लाभान्वित हो सके।

निष्कर्ष

मालवा लघुचित्रों के उदाहरण हमें परमार युग से ही उपलब्ध होने लगते हैं। यद्यपि चित्रकला की समृद्धि उससे पहले भी अनेक युगों में विद्यमान थी, परन्तु उनके लघुचित्रों की परम्परा हमें प्राप्त नहीं होती है। परमार युग से प्राप्त पोथीचित्रों से मालवा लघुचित्रों का विस्तार एवं क्रमिक विकास परवर्ती युगों में दृष्टवय है। इन मूर्तियों में शारीरिक सौष्ठव की अपेक्षा आन्तरिक भावों की अद्भुत स्पष्टता है। यद्यपि भारतीय कला सादृश्य के सिद्धान्त पर खरी नहीं उतरती, क्योंकि आदर्श को मूर्तरूप देने में ही संलग्न रहने से यह पक्ष सदैव उपेक्षित रहा है। मालवा के लोक कलाकारों ने काल्पनिक आदर्श को आत्मसात कर उसके सादृश्य निर्माण में भारत के अन्य प्रदेशों के कलाकारों की तरह अपने जीवन को सार्थक समझा, जिससे चित्रकला के अधिकतर उदाहरण सुन्दर एवं आकर्षक बने। भारतीय कला में भक्ति एवं योग के साथ–साथ भाव की अभिव्यक्ति की ओर विशेष जोर दिया गया, जिसके कारण मालवा की कला भी अक्षुण बनी रही। यह सत्य है कि मालव कला में भारतीय कला की तरह

यर्थात अंकन की अधिकांशतः उपेक्षा एवं प्राकृतिक दृश्यों के स्वतन्त्र अंकन का आभाव रहा है। एक ही सतह पर दृष्टि की परिमितता के प्रयोग सिद्ध सिद्धान्त की अवहेलना सम्पूर्ण भारतीय कला की प्रमुख कमी है। परन्तु दृश्यों के चित्रण में, मितव्यता, आध्यामिकता और रस का मधुर प्रवाह दर्शकों की अनुभूति को सन्तुष्ट करने में सहायक है। मालवा के लघुचित्रों में मानव, पशु–पक्षी एवं जड़ पदार्थों को भी स्थान दिया गया है, उनका शारीरिक सौन्दर्य आत्मा के आत्मविभोर रूप की प्रतिच्छाया ळें

सहायक ग्रन्थ सूची

1. *निगम श्यामसुन्दर–मालवा की हृदयस्थली अवन्तिका, पृ0 सं0–2*
2. *गेरौला बाचस्पति–भारतीय कला का संक्षिप्त इतिहास, इलाहाबाद, 1972,पृ0 सं0–83,134*
3. *कंवल रामलाल–प्राचीन मालवा में मन्दिर वास्तुकला, दिल्ली, 1984, पृ0 सं0–102,133*
4. *तिवारी रघुनन्दन प्रसाद–भारतीय चित्रकला और उसके मूलतत्व, वाराणसी, 1973,पृ0 सं0–5*
5. *हरिहरनिवास द्विवेदी एवं विनयगोविन्द–मध्यभारत का इतिहास, भाग–1, ग्वालियर, 1956,पृ0 सं0–58*
6. *अग्रवाल आर0 सी0–प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, पृ0 सं0–475*
7. *भगवत् शरण उपाध्याय–भारतीय कला का इतिहास,पृ0 सं0–133*
8. *एच0 एम0 द्विवेदी–मध्यभारत का इतिहास, वाल्यूम प्रथम,पृ0 सं0–21,31,482*
9. *डॉ0 राधाकृष्ण वरिष्ठ–मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, जयपुर, 1984पृ0 सं0–79*
10. *दलाल मनोहर लाल–मालवा की कला तथा स्थापत्य,पृ0 सं0–41–42, 242*
11. *राय कृष्णदास–भारत की चित्रकला, इलाहाबाद, 1972,पृ0 सं0–56*
12. *M.D.Khare- Malwa through the Ages, Bhopal,1981, Page No-99*
13. *Chandra Moti- studies in early Indian Painting, Bombay, 1970, Page No-82,106*
14. *M.S. Randhawa & J.K. Galraith- Indian Painting, 1968,Page No-49*
15. *Krishna Ananda- The Malwa Painting, Varanasi, 1963,Page No-1,5*
16. *Dr.Daljeet-A glory of Indian Miniature, Gaziabad, 1980, Page No-6,9*
17. *www.britannica.com*
18. *www.indianminiature.org*
19. *www.google.com/malwa+miniature+painting.*
20. *www.wikipedia.com*